

ज्ञानवैभवधारी
सातिशय श्रुतज्ञानके धनी
भावि तीर्थाधिनाथ की
भेंट करानेवाले चैतन्यरत्न
प्रशममूर्ति धन्यावतार
पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन
की उनके
१०६वें मंगलकारी
जन्मजयंती प्रसंग पर
शत शत वंदन !!



(पूज्य बहिनश्री) गणधरका जीव हैं, इसलिये भविष्यमें वे बारह अंगकी रचना करेंगे। बहिनश्रीकी नजर बहुत सूक्ष्म थी जैसे कि वर्तमान समाजको वास्तवमें क्या देना जरूरी है, यह उनके ज्ञानमें बहुत आया है। उनके वचनामृत प्रसिद्ध हुए तब गुरुदेव फिदा हो गये! आफरीन हो गये! एक-एक बोलमें अकेला अध्यात्मका अमृत भरा है ऐसा कहना होगा। ...भावनाका विषय प्रस्थापित करके तो उन्होंने जैसे फैंसला ही कर दिया है। मुमुक्षुओंको तो जैसे एक रत्न ही हाथमें आ गया ऐसा कहना होगा।

(पूज्य भाईश्री शशीभाई)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२६१, वर्ष-२४, अगस्त-२०१९

आषाढ कृष्ण १, रविवार, दि. ३-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६७, प्रवचन-२४

‘कुटुम्ब का मोह त्यागने योग्य है।
आत्मानुभव करने के लिए।

इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुखहँ
हेउ।

इम चिंततहँ किं करइ, लहु संसारहँ
छेउ।।६७।।

‘यह कुटुम्ब-परिवार मेरा नहीं है।’ धर्मात्मा अपने आत्मा का योग, योग अर्थात् जुड़ान.... जुड़ान कहते हैं न हिन्दी भाषा में? जोड़ना, आत्मस्वभाव में जुड़ान। युज, युज धातु है न? युज, जोड़ना। ऐसे आत्मा के अन्तर स्वरूप में एकाग्र होने के लिए धर्मात्मा को कुटुम्ब-परिवार, मेरा निश्चय से नहीं है, यह परिवार मेरा है नहीं, उसके लिए रुककर आत्मध्यान छोड़ना नहीं - ऐसा कहते हैं। है? देखो न! कितने वर्ष हुए? संसार ऐसा है या वैसा?

‘यह भाव सुख-दुःख का ही कारण है।’ देखो! यह कुटुम्ब-परिवार लुटेरों की टोली मिली है, कहते हैं। नियमसार में आ गया है न? नियमसार में आ गया है - उनके पेट भरने के लिए टोली मिली है। यदि ठीक होवे तो ठीक और यदि शरीर में कुछ (हुआ होवे) तो हाय... खिलाना-पिलाना और सेवा (करनी पड़ती है) समझ में आया? ‘यह भाव सुख दुःख का ही कारण है।’ सुख-दुःख अर्थात् लौकिक सुख -दुःख, हाँ! यह सब सुख-

दुःख अर्थात् दुःख का ही निमित्त है। पूरा परिवार, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब दुःख का ही निमित्त है। उसके पालन-पोषण में समय गँवा मत; आत्मा में रहना - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु - उन्हें भूखों मरने दिया जाए?

उत्तर - भूखा कौन मरता था? उनके पुण्य प्रमाण उन्हें मिला रहेगा। भगवानजी भाई! क्या करना इसमें? कहते हैं। लो! योगसार है न! आत्मा में एकाग्र होने के लिए इस वस्तु का - परिवार का मोह छोड़ना, अन्दर में से यह मेरे हैं - ऐसा निकाल डालना। समझ में आया? वे तो उनके कारण आये और उनके कारण रह कर उनके कारण चले जाते हैं। मेरा और उनका कुछ सम्बन्ध नहीं है - ऐसा दृष्टि में एकाकार नहीं होवे तो एकाकार योगसार नहीं हो सकता। हैं? क्या करना परन्तु? अच्छा लड़का हो तो उसके लिए थोड़ा काल व्यतीत करना या नहीं?

‘इस प्रकार कुछ विचार करने से...’ देखो! ‘इम किं चिंततह’ ‘संसार का छेद शीघ्र ही किया जाता है।’ बारम्बार विचार.... अरे! शरीर मेरा नहीं तो शरीर को पहचाननेवाले ये सब मेरे कहाँ से (होंगे)? वे तो बेचारे इसे पहचानते हैं। मुझे कहाँ पहचानते हैं वे? मैं कौन हूँ? यह कहाँ जानते हैं? वे तो (जानते हैं कि) यह शरीर मेरा पिता, और यह मेरी माँ, और यह मेरी स्त्री, यह

मेरा पति... शरीर को देखकर कहते हैं। यह शरीर, यह मेरा पुत्र; यह शरीर, मेरा पिता; यह शरीर, मेरी स्त्री; यह शरीर.... उसका आत्मा है, उसे कौन कहता है? रवाणी?

मुमुक्षु - सेवाभावी है।

उत्तर - सेवाभावी है, लो, ठीक! अपना छोड़कर भी वहाँ भाईयों की सेवा में रुका है। 'आंकड़िया' सेवाभावी सही न! परन्तु सेवाभावी का अर्थ हुआ या नहीं, अपनी सेवा छोड़कर पर की सेवा करने का भावी... ऐसा।

'यह प्राणी इन्द्रिय सुख का लोलुपी होता है। अपने सुख की प्राप्ति में सहकारी प्राणियों के प्रति मोह करता है।' ऐसा कहते हैं। स्वयं जिन इन्द्रियों के सुख का कामी है न? उसके जो साधन देखे, उनका मोह नहीं छोड़ता। यह सब निमित्त हैं, यह सब साधन हैं। ये सब स्त्री, पुत्र, पैसा, इज्जत, मकान, धूल-धाणी, यह सब साधन हैं - ऐसा

माननेवाला इनका मोह नहीं छोड़ता और इन्द्रियों के विषयों में सुखबुद्धि है और उस सुखबुद्धि में सहकारी कारण को देखकर उसमें से रुचि नहीं छोड़ता। कहो, चन्दुभाई!

मुमुक्षु - भागीदार अलग न करे तो क्या करना?

उत्तर - कौन अलग नहीं करता? ठीक! सब अलग ही है, कौन अलग नहीं करता? ऐ... निहालभाई! भागीदार अलग नहीं करता, लड़के अलग नहीं करते, स्त्री अलग नहीं करती... परन्तु करना क्या? तू अलग हो न, सब अलग ही है। हैं?

मुमुक्षु - मुक्किल भी अलग नहीं करता।

उत्तर - मुक्किल कोई अलग नहीं करता। वह

एक ओर बैठ गया, कौन असील वहाँ पकड़ने आता है? आता है कोई?

'बाल्यावस्था में माता-पिता के द्वारा उसका पालन-पोषण होता है...' वहाँ इन्द्रियों का सुख माना है न? साधन से वहाँ माना है। 'लाड़-प्यार से रखा जाता है...' समझ में आया? 'इसलिए उनके प्रति जीव तीव्र मोह रखता है। युवावय में स्त्री से और पुत्र-पुत्रियों से इन्द्रिय सुख पाता है...' युवावस्था में इन्द्रियाँ, स्त्री, और पुत्र-पुत्री का मोह नहीं छोड़ता। इस ओर करना नहीं और वहीं

का वहीं फँसा रहता है, कहते हैं। इसके पुत्र, स्त्री, और लड़के... इनका करूँ... इनका करूँ... इनका कुछ ठीक करूँ... स्वयं मरकर चाहे जहाँ जाये। कहाँ गये? वासुदेवभाई! आये हैं या नहीं? उन्हें संसार की थोड़ी अनुकूलता हो गयी लगती है; इसलिए निवृत्ति ली है। कहो, समझ में आया?



'जिन मित्र और

नौकरों-चाकरों द्वारा इन्द्रिय के सुखभोग में मदद मिलती है...' ठीक लिखा है। जिन मित्रों से और... समझ में आया? नौकर-चाकरों से इन्द्रियों के सुख में सहकारी होते हैं, उनका मोह नहीं छोड़ता। स्वयं मूढ है न! अपने सुख के निमित्त देखता है, इसलिए उसमें से हटना नहीं रुचता परन्तु सुख आत्मा में है - ऐसा निर्णय करे तो उस सुख के निमित्त के प्रति इसका मोह छूट जाये। समझ में आया? 'और जिनसे इन्द्रिय सुख में बाधा पहुँचती है, उनका शत्रु बन जाता है।' इन्द्रिय सुख में विघ्न करनेवाले को शत्रु मानता है। इन्द्रिय सुख में अनुकूल माने और मित्र माने परन्तु इन्द्रियसुख ही तेरा खोटा है।

ठीक कहा है।

‘सर्व प्राणी अपने सुख के स्वार्थ में दूसरों के प्रति मोह करते हैं।’ सभी प्राणी अपने सुख के लिए (मोह करते हैं)। कहीं-कहीं अण्डरलाईन की है। इतना सब पढ़ने का समय कहाँ है? सब प्राणी सुख के स्वार्थ में दूसरों के प्रति मोह करते हैं। सुख के स्वार्थ के लिए.... यदि आत्मा का सुख इसे भासित हो तो बाहर में सुख भासित नहीं हो तो उनके निमित्तों में भी उन्हें सुख का सहकारी नहीं माने। कहो, ठीक होगा, दरबार? हमारा दरबार है यह। कहो, समझ में आया? ‘स्वार्थ न सधे तो स्नेह छोड़ देता है।’ स्वार्थ न सधे, शरीर में खून न देखे या पैसा न देखे, कमाता न देखे तो (ऐसा कहता है) यह तो साधारण व्यक्ति हो गया है। घर में एक कमजोर व्यक्ति है, कमजोर। यह सब इन्द्रिय सुख के लोलुपी होते हैं, और निमित्तों में मोह करते हैं तो वहाँ ऐसा है, कहते हैं। मनसुखभाई! तुम तो अब निवृत्त हो गये है। कुछ अब दोनों लड़कों को सामने देखना? बापू वहाँ मरते हैं या जीते हैं? आहा...हा...!

‘ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव को जल में कमल की तरह घर में रहना चाहिए।’ कमल और जल को जैसे स्पर्श नहीं होता, वैसे धर्मात्मा को अपने अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का साधक अपने आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। उस आनन्द के सुख का साधक, जल में कमल को लेप नहीं लगता, उस प्रकार गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी रहता है। समझ में आया?

बड़ी सामायिक में कहा है - ‘यह स्त्री, धन, पुत्र सर्वथा ही अपने आत्मा से भिन्न हैं, बाहरी रहनेवाले हैं, कर्म के उदय में प्राप्त हैं, वायु के समान उनका संयोग चंचल है।’ समीर... समीर शब्द है न? जैसे वायु क्षण में वायु आवे-ऐसे ये सब पत्ते वायु के कारण जैसे फिरा करते हैं - ऐसे क्षण में आवें और क्षण में जावें। पूर्व

का पुण्य होवे तो मिलान खाता है। जहाँ पुण्य (समाप्त हुआ वहाँ) फू... होकर सब उड़ जाते हैं। लो, समझ में आया? ‘जो मूढ बुद्धि जीव उनके संयोग से सुखदायक सम्पत्ति मिलना मानते हैं, वे ऐसे मूर्ख हैं जो अपने मन के संकल्प से ही स्वर्ग की सम्पत्ति प्राप्त करना चाहते हैं।’ क्या कहते हैं? इन्द्रिय के सुख के लोलुपी और अतीन्द्रिय सुख के अभिलाषी नहीं... अतीन्द्रिय सुख जो भगवान आत्मा की जिसे रुचि नहीं और इस इन्द्रियसुख का लोलुपी है, (वह) मन की कल्पना ऐसी करता है, मानो मुझे सुख स्वर्ग मिल गया हो - ऐसा मान लेता है। यह भी हम बड़े सेठ हैं, पैसेवाले... देखो न! इनके समक्ष तो बात पूछते हैं। भले इनके लड़के पैसेवाले हैं, परन्तु ये पैसेवाले कहलाते हैं न? ‘पूनमचन्द मलूकचन्द’... ‘पूनमचन्द मलूकचन्द’ कहलाते हैं या वहाँ ‘पूनमचन्द’ बिना पिता का कहलाता होगा। बापू! समझने जैसे, बापू की माने नहीं, कहते हैं। आहा...हा...!

कहते हैं, अतीन्द्रिय सुख की रुचिवाले (जीव) को इन्द्रिय सुख की रुचि नहीं है, इसलिए इन्द्रिय सुख के सहकारी निमित्तों में उसे मोह नहीं होता है परन्तु इन्द्रिय सुख के जो लोलुपी हैं, उनकी कल्पना में जो अनुकूल लगे हों (उनमें) - ऐसी कल्पना खड़ी करते हैं कि मानो हमने स्वर्ग को प्राप्त किया, इन्द्रपद को (प्राप्त किया) - ऐसा संकल्प से खड़ा करते हैं, परन्तु भगवान आत्मा में आनन्द है, उसकी दृष्टि नहीं करते। इस संकल्प से बड़ा स्वर्ग खड़ा करते हैं। ‘अपने मन के संकल्प से ही स्वर्ग की लक्ष्मी प्राप्त कर लेना चाहते हैं।’ मानो कि अपने को स्वर्ग की लक्ष्मी मिल गयी। ओ...हो...! स्त्री, पुत्र, पैसा... परन्तु इस ओर दृष्टि नहीं देता। यहाँ आत्मा में केवलज्ञान की लक्ष्मी मिले - ऐसी है। इस प्रकार दृढता करके आत्मा अल्पकाल में केवलज्ञान का स्वामी होगा - ऐसे अतीन्द्रिय आत्मा में रुचिवाले - ऐसी भावना करते हैं परन्तु इस विषय

की रुचिवाले को जहाँ सुखबुद्धि पड़ी है, पर में सुखबुद्धि है, उसे आत्मा में सुखबुद्धि कभी होती ही नहीं।

शरीर की अनुकूलता, परिवार की अनुकूलता, पैसे की अनुकूलता, कीर्ति की अनुकूलता माननेवाले को आत्मा की सुखबुद्धि नहीं हो सकती। समझ में आया? ऐसा कहना चाहते हैं। मुझे बाहर की यह अनुकूलता है, बहुत अनुकूलता है। अनुकूलता अर्थात् उसका अर्थ यह कि उसमें सुख माना है, मूढ है, वहाँ कहाँ पर में अनुकूलता थी? जो पर की अनुकूलता की रुचि में पड़ा है, उसे अतीन्द्रिय सुख की रुचि नहीं होती है। महा भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है, उसके प्रेम में यह पर का प्रेम और मोह उसे नहीं होता है। अस्थिरता का जरा होता है, उसकी यहाँ बात नहीं है।

मुमुक्षु - बाहर लाठी मारता है न?

उत्तर - लाठी मारता है। ठीक! विकल्प खड़ा करता है, यह अच्छा, हाँ! यह अच्छा। दूसरे के लड़के होंगे परन्तु मेरा लड़का अलग प्रकार का - ऐसा मानता है। दूसरों के लड़के होंगे परन्तु मेरा लड़का 'महासुख'! ओहो...हो...! आज्ञाकारी...

बापूजी... बापूजी... बापूजी... बापूजी... करे वहाँ (उत्साह चढता है)। दूसरों के लड़के होंगे परन्तु मेरे (दूसरे प्रकार के हैं)। दूसरों की स्त्री भले होगी परन्तु मेरे घर में सीधी-सादी स्त्री... एक कहता था, यह सब सुनी हुई बात है कि दूसरे भले कहते हों मेरे घर में पत्नी सीधी-सादी है, उसके विरुद्ध होकर मैं कुछ दूसरा करूँ? बेचारी ऐसे ऊँची (आँख नहीं) करे, ऐसी पत्नी है। कहा, अद्भुत यह तो...! मेरे घर की स्त्री ऐसी नरम... ऐसी नरम... ऐसी सीधी-सादी कि किसी दिन ऊँची आवाज नहीं, इसलिए उसकी अनुकूलता छोड़कर मैं कुछ प्रतिकूल करूँ? चन्दुभाई! अरे! परन्तु यह आत्मा महा अनुकूल पड़ा है इसे छोड़कर तू (बाहर में) अनुकूलता माने तो तेरा भ्रम है। अन्दर कहना तो यह चाहते हैं। परिवार का मोह छोड़ - इसका अर्थ वह दृष्टि छोड़ दे। आसक्ति तो होती है परन्तु अन्दर रुचि तो छोड़ दे और यह मुझे विषय के सहकारी कारण हैं, इसलिए मोह करना, यह छोड़ दे। ये सहकारी सुख के नहीं, दुःख के हैं। आत्मा के आनन्द के कोई सहकारी नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...!

प्रकाशन कार्य गतिविधि

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा 'स्वानुभूतिदर्शन' ग्रंथ पर हुए प्रवचनों को कम्प्यूटर में फिड करने का कार्य चल रहा है। पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की जन्मजयंति प्रसंग पर आत्मावलोकन ग्रंथ पर हुए प्रवचनों के दो भाग (गुजराती में), एवं चिद्विलास ग्रंथ पर हुए प्रवचनों का एक भाग प्रकाशित करने की भावना है। तत्श्चात् राज हृदय भाग-३ और ४ (हिन्दी में), पूज्य भाईश्री की जन्म जयंति पर प्रकाशित करने की भावना है। संभवतः परमागमसार पर के प्रवचनों के दो भाग भी प्रकाशित होने की संभावना है।

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ७३ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि.१३-१०-१९८२, प्रवचन
क्रमांक-२ (विषय : मार्गदर्शन)

करोड़ो रूपये खर्चे, मन्दिर बनवाए, आजीवन
ब्रह्मचर्य पालन करे, पर ये तो शुभराग हैं। शुभराग
है—वह क्लेश है, दुःख है, आडंबर है। ऐसे आडंबर
करो तो करो, परन्तु सर्वज्ञ वीतराग देवने जैसा
आत्मा बतलाया है, उसकी प्राप्ति तो इनसे नहीं
होगी। धर्मके नाम पर यह शुभ राग का ही रस
है। परन्तु ऐसे राग के रस द्वारा वीतराग स्वरूपकी
प्राप्ति नहीं होती। ७३

समयसार, १४२ कलश के प्रवचनों में से
वचनामृत है। 'करोड़ो रूपये खर्चे, मन्दिर बनवाए,
आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, पर ये तो शुभराग
हैं।' शुभराग के विविध प्रकार हैं। उसमेंदान, देव-
गुरु-शास्त्र के प्रति बहुमान और व्रत, नियम, संयम
इत्यादि रूप जितने भी शुभराग हैं, 'शुभराग है-
वह क्लेश है,...' ऐसा यहाँ कहना है। जैसे कोई
क्लेश करता है, ऐसे यह आत्मा सम्बन्धित क्लेश है।

मुमुक्षु :— समाज में क्रीमत है।

पूज्य भाईश्री :— इसीलिये तो लोगों को कठिन
पड़ता है। विद्वानों, पण्डितों अथवा जिसने-जिसने
शुभभाव को महत्ता दी है, उन सब जीवों को यह
विषय कठिन पड़ता है, किसी को अरुचि हो जाती
है, किसी को कटु लगता है, परन्तु परम सत्य है।
है तो परम सत्य है। जिसे शुद्धात्मा की रुचि है,
शुद्धता की रुचि है उसे तो परम अमृत समान है।
परम सत्य है न! उसको मीठा लगता है, अमृत जैसा
लगता है। इसीलिये तो श्रीमद्जी ने कहा कि—

वचनामृत वीतरागना परम शांतरस मूल
औषध जे भवरोगना कायरने प्रतिकूल।

कायर लिये हैं, नाहिंमत, ... लिये हैं। जो
जीव अपना पुरुषार्थ शुभभाव में ही रोकता है, जिसकी
रुचि शुभभाव में ही है ऐसे जीवों को यह वचन
प्रतिकूल पड़ेंगे। परन्तु ये वचन कैसे हैं? कि भवरोग
की औषधि के समान हैं और यह परमशांतरस का
मूल है। परमशांतरस का यह मूल है, ऐसा कहा।
बहुत कह गये हैं।

'करोड़ो रूपये खर्चे, मन्दिर बनवाए,
आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे,...' वह दान दे,
करोड़ो रूपये खर्चे अर्थात् दान करे, करोड़ों का दान
करे, थोड़ा नहीं और देव-गुरु-शास्त्र, मन्दिर बनवाए
उसमें तीनों ले लेना। शास्त्र प्रकाशन, भगवान का
मन्दिर बनवाना, गुरु आदि को आहारदान देना इत्यादि
सब आ जाता है। पूजा, भक्ति वह सब आता है।
और ब्रह्मचर्य आदि व्रत, संयम, कोई भी प्रकार का
नियम, बाह्य त्याग उन सब में शुभराग की प्रवृत्ति
है। भगवान कहते हैं कि वह क्लेश है।

मुमुक्षु :— ऐसा तो आप ही कहते हो, अन्य
कोई नहीं कहते।

पूज्य भाईश्री :— भगवान कहते हैं, ऐसा तो
कहा। हम कहते हैं, ऐसा कहाँ लिया है? मैं ऐसा

कहता हूँ, ऐसी बात यहाँ नहीं है। गुरुदेव प्रवचन में ऐसा कहते थे कि भगवान ऐसा कहते हैं, आचार्यदेव ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं। अब बात इतनी है कि कोई कहे या ना कहे, कौन कहता है उसे हम एक ओर रखो। हकीकत क्या है? सत्य को सत्य की कसौटी पर, अनुभव की कसौटी पर चढ़ाना। किसने कहा है उसके साथ ज्यादा कोई मतलब नहीं है। यूँ तो पुरुषप्रमाण वचनप्रमाण है परन्तु पुरुष को पहचाने बिना प्रमाण क्या करेगा? जहाँ पुरुष की पहचान न हो, वहाँ वचन के प्रमाण का प्रश्न नहीं रहता। अथवा कोई वचन को प्रमाण करता है और कोई वचन को अप्रमाण करता है तो भी पुरुषप्रमाण रहा नहीं और वचन भी प्रमाण नहीं रहा, ऐसा है। यहाँ तो ऐसा कहना है।

बहुत शुरूआत में जैनशास्त्र हाथ में आया तब ऐसा विचार आता था कि सत्य तो सत्य की कसौटी पर ही निश्चित करना चाहिये। फिखर कोई अपने जैन भाई के साथ चर्चा करता था तो ऐसा कहते थे कि भगवान महावीर ने ऐसा कहा है इसलिये सत्य। इस तरह सत्यता की बात नहीं होनी चाहिये। वह तो सत्य को निमित्त से साबित किया। सत्य सत्य के उपादान से साबित होना चाहिये। भगवान महावीर ने कहा है इसलिये बात सत्य है, ऐसा नहीं होना चाहिये, ऐसा मैं कहता था। क्योंकि संप्रदाय का तो विषय था नहीं।

मुमुक्षु :— सत्य के लिये भ्रमणा रहती हो तो महावीर का निमित्त लें तो...

पूज्य भाईश्री :— कोई मर्यादा है, अपेक्षा है। स्वयं को भ्रमणा रहती हो तो उसे, जो सत्पुरुष है, भगवान के वचन हैं उसके साथ मिलान करना चाहिये। वरना स्वच्छंद होने में देर नहीं लगती। वह पहलू ठीक है। परन्तु यहाँ तो कोई एकान्त आज्ञा से विचार करे कि गुरु ने कहा है इसलिये सत्य, भगवान ने कहा है इसलिये सदत्य। और उसको अनुभव की कसौटी पर न चढ़ाये तो उसका माना हुआ वह वास्तव में सत्य नहीं है, तो भी उसने माना हुआ सत्य

नहीं है। क्योंकि वह बात मर्यादित है।

मुमुक्षु :— गुरुदेव ने ऐसे ही अपनाया है न।

पूज्य भाईश्री :— नहीं तो देखो, उनको क्या हुआ? कि कुलधर्म से तो जैनकुल था। भले स्थानकवासी, लेकिन नाम तो जैन था, एक बात। कैसे माने कि जैन में गलत हो सकता है? अतः विचार नहीं आता। कोई भी संप्रदाय में। हमारे संप्रदाय के देव-गुरु-शास्त्र जूठे हैं ऐसा उस संप्रदाय में जन्म लेकर तुरन्त यह विचार नहीं आता है। क्योंकि उस कर्म से तो उस संप्रदाय में आना हुआ है। उस संप्रदाय में आने योग्य पूर्वकर्म के उदय से तो उस संप्रदाय में जन्म हुआ है। अतः पहले उसने सम्मति देकर यहाँ प्रवेश किया है, फिर द्रव्य में उदय आया है, बाहर में उदय आया है। इसलिये उसको तो यह बुद्धि होती ही नहीं, प्रारंभ में तो ऐसी बुद्धि नहीं होती। अपने तो अपने अनुभव से भी समझ सकते हैं। ऐसी बुद्धि पहले नहीं होती। यह बराबर है ऐसा ही होता है। परन्तु जो जीव जागृति से, परीक्षाबुद्धि से, सत्य-असत्य का निर्णय करने की बुद्धि से केवल सत्यही मानना है ऐसा विचार करे तो उसे परीक्षा से असत्य असत्यरूप में ज्ञात हो, जान सके ऐसा विषय है। वह यहाँ तक कि स्वयं स्थानकवासी साधुओं का संग किया, उपाश्रय में बारंबार उनके सत्संग में जाते थे, दुकान पर बैठे तोभी गाँव में साधु आये हो तो पालेज से भरूच चले जाते। ज्यादातर (वहाँ रहते) और दुकान पर कम बैठे। और दीक्षा अंगीकार की। स्थानकवासी साधु गुरु है, ऐसा मान्य करके, योग्यता में आकर दीक्षा अंगीकार की। ऐसा कहते थे। यह तो प्रत्यक्ष में बहुत बातें हुई है न। कि उसमें पूर्ण रूप से डूबे हुए थे। गले तक डूबे थे उतना ही नहीं, अपितु सर तक डूबे हुए थे। उसमें से बाहर निकले हैं। ऐसे ही नहीं निकले हैं। तो वहाँ नाम से जैन थे। फिर भी वह सत्य है या नहीं, इसका विचार किया है।

दूसरा क्या है? कि जिसे प्रयोजन की बुद्धि है, जिसे बंधना नहीं है उसे बाँदनेवाला कोई नहीं

है और जिसे बँधना है उसे छुड़ानेवाला कोई नहीं है। यह परिस्थिति है। इसलिये जिसे बँधना नहीं है, उसको तो बँधन के अनुकूल क्या है और प्रतिकूल क्या है, यह उसके प्रयोजन का विषय हो जाता है। इसलिये जहाँ फ़र्क पड़े वहाँ तुरन्त ख्याल आता है कि यहाँ फ़र्क क्यों पड़ता है? फ़र्क पड़ता है इसलिये वहाँ बात को ऐसे ही छोड़ नहीं देता। जहाँ फ़र्क पड़े वहाँ तो गहराई में ऊतर जाता है। भले ही कोई जगह फ़र्क पड़ता है। फ़र्क पड़ने का विषय भले बहुत विशाल न हो, कोई पोइन्ट हो, तो भी जहाँ प्रयोजनभूत विषय का मुद्दा हो वहाँ वह गहराई में ऊतर जाता है और सत्यासत्य का निर्णय करता है। स्वयं बहुत छोटी उम्र में, युवा २१ वर्ष की उम्र में दीक्षा ली है। दो-चार साल तो उस संप्रदाय के शास्त्रों के अध्ययन में एकान्त में व्यतीत किये हैं। कहीं प्रवचन देना या अन्य कोई बाह्य प्रवृत्ति नहीं। मात्र स्वाध्याय और अध्ययन किया। उसमें कहीं-कहीं शंका हुई, परस्पर विरुद्धता हुई इसलिये। अतः संप्रदाय और संप्रदाय के साधु के पास गये। जो उनसे उम्र में बड़े हों, वृद्ध हों। उम्र में वृद्ध, ज्ञान में वृद्ध ऐसी छाप हो, उनके पास जाये। एकान्त में चर्चा करे। इसमें ऐसा कहा है, परन्तु यह बात ऐसे कैसे हो सकती है? तो (साधु) कहते थे, कानजी! तुम्हारी बात सत्य है। क्या कहते थे? लेकिन अभी संप्रदाय में ऐसा कुछ कहेंगे तो हमें कोई भोजन नहीं देगा, निकाल देंगे। संप्रदाय में रहने नहीं देंगे।

गुरुदेव को लगा, मर गये, इसमें तो आत्मार्थिता भी नहीं रहती है। ये तो मानों भोजन के लिये हमने यहाँ दीक्षा अंगीकार की हो! हमारा घर ऐसा तो नहीं था कि भोजन के लिये दीक्षा लेनी पड़े। इसलिये बड़ी दरार पड़ गयी, अल्प शंका में से बड़ी दरार पड़ गयी। मर गये, ये तो गड़बड़ीवाली बात है। विश्वास उठ गया। बाद में दिगंबर के शास्त्र अवलोकन करने लगे। उसमें सर्वप्रथम समयसार प्राप्त हुआ। पहले तो मोक्षमार्ग प्रकाशक आया है। समयसार मिला। इसलिये बात यह है कि जो सत्य का खोजी जीव

है (वह सत्य प्राप्त करता है)।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि पूरी दुनिया भले ऐसा कहती हो कि इसने यह दान दिया इसलिये धर्म किया, मन्दिर बनवाया और प्रतिष्ठा की इसलिये धर्म किया और संयम पाला इसलिये धर्म किया। भगवान कहते हैं कि 'वह क्लेश है, दुःख है, आडंबर है।' लो, ठीक! धर्म नहीं परन्तु धर्म का एक आडंबर है। यह कलशटीका में 'धर्म का आडंबर' शब्दप्रयोग किया गया है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— हाँ, फिर उसका मिलान कर लेना चाहिये। अथवा उसमें बात ऐसी है कि यदि एक बार कहनेवाले हैं वे निर्दोष कथन करनेवाले हैं, जो कहने की पद्धति है वह निर्दोषता की पूरी जो लाईन है वह निर्दोषता पर आती है, तब यदि उसको स्वयं को विचार में कथन के साथ मिलान न हो तो उसको अनुभव में रखने का प्रयत्न करना चाहिये। अब अनुभव में उसका मिलान न हो, तब यह विषय थोड़ा नाजुक हो जाता है। तब उसे ज्यादा यह नक्की करना चाहिये कि कहनेवाले की मर्यादा क्या है और मेरे अनुभव की मर्यादा क्या है।

आप सब को बहुत आसान हो गया है, लेकिन हमें तो यह बात थोड़ी कठिन पड़ी है। कुलधर्म से ही आप को तो यह शंका करने का सवाल नहीं था। हम को तो यह विषय थोड़ा विचार में आया था। पहली बार श्रीमद् राजचन्द्र पढ़ा तब, उन्होंने प्रारंभ में, बड़े ग्रन्थ में शुरूआत में मोक्षमाला में एक बात लिखी है कि वेदांत अपेक्षा जिनागम में वस्तु का स्वरूप अनंतगुण निरूपण किया है। अब उस वक्त वेदांत का थोड़ा-बहुत अवलोकन किया था और ऐसी छाप पड़ी थी कि वेदांत में अगाध ज्ञान है। अनादि है, अपुरुषेय है, किसीने किया नहीं है और उसमें अगाध ज्ञान है। हमने अगाध ज्ञान सब कहीं पढ़ा भी नहीं था। एक उपनिषद् का भी थोड़ा विषय पढ़ा था। इसलिये पहले शंका हुई कि लिखनेवाले ने शायद वेदांत पढ़ा नहीं होगा। यदि

वेदांत का अध्ययन किया होता तो ऐसी बात नहीं लिखते। इसलिये लिखनेवाले को कदाचित् वेदांत का ज्ञान नहीं होगा अथवा वेदांत का ऐसा कोई अवगाहन नहीं किया होगा। ये तो अन्दर में कैसी गड़बड़ी होती है! फिर आगे बढ़े। आगे चलते, चलते, चलते, चलते ऐसा लगा कि लिखनेवाले की मध्यस्थता बहुत है। पक्षपात करके कुछ नहीं लिखते। दोष कहाँ उत्पन्न होता है? कि जीव पक्षपात करे वहाँ। मात्र सत्य को ही ग्रहण करता है और कहीं पक्षपात नहीं करता। उतना ही नहीं (परन्तु) विशेष सरलता तो जीव की वहाँ दिखती है कि अपने परिणाम के विषय में भी वे जैसा है वैसा ही कहते हैं कि अभी ऐसा वर्तता है, ऐसा वर्तता है, परिणाम में ऐसी वृत्ति वर्तती है, ऐसा वर्तता है। यह सब उन्होंने पत्र में लिखा है। मध्यस्थता इतनी है तो ये लिखनेवाले यँ ही किसी को कुछ भी कह दे अथवा चाहे जैसे पक्षपात करके करके कह दे, ऐसा नहीं लगता है। इसलिये वेदांत के विषय में यँ ही नहीं लिख दिया है, ऐसा नहीं होगा। पुनः (विचार) बदल गये, बाद में बदले। क्योंकि वहाँ पुरुषप्रमाण नहीं किया था, जब शुरू किया था पुरुषप्रमाण नहीं किया था।

मुमुक्षु :— शुरूआत में पुरुषप्रमाण करने का बनता भी नहीं है। क्योंकि स्वयं तो अज्ञानी है।

पूज्य भाईश्री :— स्वयं अज्ञानी है और पुरुष को पहचानना नहीं है। कैसे प्रमाण करेगा? प्रत्यक्ष पुरुष को पहचानना, प्रमाण करना भी मुश्किल पड़ता है तो फिर यह तो लेखनी में हो वह तो परोक्ष पुरुष होते हैं। यह बात तो शुरूआतवाले को अत्यंत कठिन पड़ती है।

अतः पुरुषप्रमाण नहीं किया था। इस ओर पुराना तो जीव को अन्दर होता ही है। पुराना हुए बिना यँ ही ऐसी स्थिति हो, ऐसा तो नहीं बनता। बात कठिन तो पड़ती है। फिर भी उसमें से मार्ग निकलता है। यदि छूटना हो तो मार्ग निकले बिना नहीं रहता। यह बात नक्की है। वह बराबर सत्य-असत्य की कसौटि कर सकता है, पुरुष की पुरुषप्रमाणता की वह कसौटि

कर सकता है। परन्तु उसे सत्य ही ग्रहण करना चाहिये, निर्दोषता को ही ग्रहण करना चाहिये, निर्दोषता के पक्ष में ही उसे ढलना चाहिये। अल्प भी सदोषता के पक्ष में उसे ढलना नहीं चाहिये। यह उसका सिद्धान्त है।

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— हाँ, ग्रहण हुआ था। पहले सीधा ही वह पक्ष आया था। वेदांत से विपरीत कहा और सीधा वेदांत का पक्ष हुआ कि कहनेवाले ने वेदांत पढ़ा नहीं होगा, ये तो वेदांत को अन्याय करते हैं।

मुमुक्षु :— वह पक्ष नहीं रहा।

पूज्य भाईश्री :— उसका कारण है कि सत्य की खोज करनी थी। आखिर सत्य क्या है ऐसी जो जिज्ञासा, ऐसा प्रश्नवाचक चिह्न है वह ज्यों का त्यों था।

गुरुदेव ने एक बार प्रवचन में बहुत सुन्दर बात कही थी कि कोई भी मुमुक्षु जीव को विचारदशा में रहे हुए जीव को, विचारदशा में सत्य क्या है उसका अवकाश रखना चाहिये। ऐसा एक वचन कहा था। चलते प्रवचन में कभी ऐसे वचन निकल जाये न! यह सब अंतर मंथन में से निकलता है। विचारदशा में जीव को, सत्य क्या है उसकी खाली जगह, अवकाश रखना चाहिये। पकड़ न करे कि मैंने जो यह माना है वह बराबर है। उसने कुछ न कुछ तो माना ही होता है। जीव मान्यता के परिणाम रहित, श्रद्धान के परिणाम रहित तो है नहीं। इसलिये उसने कुछ माना है और जो कुछ माना है वह विपरीत माना है, सुलटा नहीं माना है। कैसे निर्णय करना कि विपरीत माना है? कि उसको सुख-शांति और आत्मिक आनन्द नहीं है। बराबर है? उसको जो आत्मिज्ञक सुख चाहिये, उसकी प्राप्ति नहीं है वह, यह सूचित करता है कि उसने माना है उसमें उसको बदलने की आवश्यकता है।

अतः मान्यता का विषय, विपरीत माना हुआ यँ ही पड़ा हो तो उसकी स्थिति बदलती है कि

यह मान्यता मुझे बदलनी पड़ेगी। तब तो वह सत्य की खोज करता है। अतः उसकी जो पकड़ है वह ढिली है वहाँ। और यदि सत्य सामने आता है और जो सत्य का चाहक है, मात्र सत्य का चाहक है वह शीघ्र ही उस विषय में निर्णय कर सकता है। अज्ञानी के ज्ञान में भी इस भूमिका में यदि सत्य का अवकाश रखा हो तो वह सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है। आत्मा का निर्णय भी कहाँ करता है पहले? अज्ञान में ही करता है न। इसीलिये ज्ञान है वह खुल्ला है, ज्ञान खुल्ला रहा है ऐसा कहने में आता है। कब? कि जब वह केवल सत्य के लिये तैयार हो तब। अन्यथा वह ज्ञान भी पक्षपातवाला होता है, वह ज्ञान विपरीत मान्यता के पक्ष में झुका हुआ होता है और वह ज्ञान सत्यासत्य का सच्चा निर्णय नहीं कर सकता।

क्या कहते हैं? कि 'शुभराग है—वह क्लेश है,....' यह एक विषय लेने जैसा है कि दुःख है, वह दुःख तो अनुभव का विषय है। तुझे कहाँ किसी को पूछने जाना पड़े ऐसा है? और यहाँ कहाँ पुरुषप्रमाण करने का सवाल है। अनुभवप्रमाण करने का सवाल है। दुःख है। शुभराग भी तुझे विद्यमानरूप से वर्तता है। अब उसमें दुःख है, ऐसा कहनेवाले कहते हैं, तो कहनेवाले सच्चे हैं या जूठे हैं, यह तेरे अनुभव से निर्णय कर।

यदि अब तक तूने शुभराग में सुख माना है और कहनेवाले ने तेरी मान्यता से विपरीत कहा तो, तूने ऐसा तो कुछ निर्णय नहीं किया है न कि मेरी मान्यता के अनुकूल कहे वह सत्य और प्रतिकूल कहे वह असत्य? ऐसा तो तूने निर्णय नहीं किया है न? तुझे तो कोई भी बात को सत्यासत्य को निश्चित करनी है कि यह सत्य है या असत्य है? यह तो तेरे अनुभव का विषय है, कर अनुभव से निर्णय। ऐसी बात है।

सम्यक्ज्ञान का भी यह एक धर्म है, गुण है कि सम्यक्ज्ञान सच्चा ज्ञान है, सत्य जाननेवाला ज्ञान है, वस्तु जैसी है वैसी उस ज्ञान में ज्ञात होती है,

ऐसा निर्मल है। निर्मल है न? इसलिये वस्तु जैसी है वैसी ज्ञात होती है। फिर भी सम्यक्ज्ञानी का हमेशा यह ज्ञान का गुण है और धर्म है और स्वभाव ही है कि कोई भी बात आती है उसको वह मध्यस्थ होकर जाँचता है। मध्यस्थता उसका गुण है, मध्यस्थता उसका धर्म है।

वह तो गुरुदेव को शुरूआत में परीक्षाबुद्धि से मिलना हुआ तब, हमने तो देखा है। दोपहर कभी-कभी बैठे हों। कोई विरोधी अखबार आया हो। विरोध का अखबार आये तो ऐसा अखबार आये कि उसके अन्दर अत्यंत अनुचित शब्दप्रयोग किया हो, हिन शब्दप्रयोग किया हो, गालीप्रदान की हो, तू-तू आदि अनेक प्रकार से लिखा हो और ऐसा लिखनेवाला विद्वान हो। (गुरुदेव) वह कुछ नहीं देखते थे। इसने कितना हिन लिखा है, कितना अनुचित लिखा है वह नहीं देखते थे। उसने जिस शास्त्र में से ऐसा लिखा है कि ऐसा नहीं और ऐसा अर्थ करना चाहिये तो, यह उसने क्या मानकर ऐसा लिखा है? उसकी मान्यता क्यों बराबर है या नहीं है, उसकी चर्चा चलती। ज्ञान की मध्यस्थता सूचित करती है कि कहनेवाला जूठा है ऐसा सीधा नहीं लेते थे। वह क्यों सच्चा है या जूठा है उसका बराबर, योग्यता-अयोग्यता का पूरा विचार करते थे। अन्यथा मालूम है। फिर भी। वे तो उससे ऊपर है। फिर भी विचारपद्धति इतनी सुन्दर थी। वह सम्यक्ज्ञान का धर्म है, ऐसा है।

अतः कोई भी बात को उसके गुण-दोष से देखनी। शुभराग है वह क्लेश है ऐसा कहा है तो तेरे अनुभव में शुभराग क्लेशरूप से, दुःखरूप से अनुभव में आता है? यदि अनुभव नहीं होता है और कहनेवाले प्रमाणिक है ऐसा यदि तूने स्वीकार किया हो तो तेरे अनुभव में कुछ भूल होती है। ऐसा उसे विचार करना चाहिये कि यह जो अनुभव वर्तता है उसमें कुछ भूल है।

मुमुक्षु :— वास्तव में तो पुरुषप्रमाण ज्ञानी को होता है।

पूज्य भाईश्री :— उसमें दो प्रकार है। एक तो

ज्ञानी ज्ञानी को पहचानते हैं और एक तो जो मुमुक्षु आत्मार्थी होता है वह पहचानता है। डॉक्टर डॉक्टर को जानता है कि यह समझता है या नहीं समझता और एक दर्दी डॉक्टर को जानता है, भले ही डॉक्टरी पढ़ा न हो तो भी। ऐसी एक परिस्थिति है, ऐसी परिस्थिति है कि चार डॉक्टर भले ही निष्णात आये हो फिर भी दर्दी कहे वह सच्चा। और उन लोगों में उनके विज्ञान में है कि, डॉक्टरी विज्ञान में यह बात है कि पेशन्ट इज तो बेस्ट जज। निदान के मामले में पेशन्ट है वह बेस्ट जज है, ऐसा कहा जाता है। उन लोगों का अन्दर-अन्दर का यह विषय है। ऐसे, ज्ञानी ज्ञानी को पहचानते हैं और एक आत्मार्थी ज्ञानी को पहचानता है। इसके अन्दर दो भूमिका है। अतः आत्मार्थीपने में आत्मार्थीता आयी हो तो उसको पहचान होती है और नहीं तो उसको पहचान नहीं होती, ऐसा है।

‘शुभराग है—वह क्लेश है, दुःख है,...’ ऐसा कहा तो जब तक इस नास्ति के विषय में भी ज्ञान की भूल होती है, दुःख को दुःखरूप नहीं जानता, पहचानता नहीं तो उसको वहाँ गहराई में उतरना चाहिये। वहाँ से उसको नहीं बढ़ना चाहिये। अनुभव से निर्णय करो। शास्त्र से यूँ ही निर्णय करने जाये और मात्र न्याय से सम्मत करे तो भी जब तक उसको अनुभव का प्रमाण प्राप्त नहीं होता है तब तक, उसने जो निर्णय किया है वह कब बदल जायेगा उसका ठिकाना नहीं रहेगा। वह आधार रहित बात है। अथवा निमित्त आधारित अर्थात् पर आधारित निश्चित की हुई बात वास्तव में टिकती नहीं। आधार गलत है, उसको स्वयं का आधार नहीं है।

‘शुभराग है—वह क्लेश है, दुःख है,...’ इससे अधिक कहा कि **‘आडंबर है।’** दिखावा है धर्म का। **‘ऐसा आडंबर करो तो करो, परन्तु सर्वज्ञ वीतराग देवने जैसा आत्मा बतलाया है, उसकी प्राप्ति तो इनसे नहीं होगी।’** वह उसका उपाय नहीं है। बहुत स्पष्ट बात है कि उससे प्राप्ति हो, दुःख से और क्लेश से शांति की प्राप्ति हो

वह कोई भी प्रकार से नहीं बनता। राग से राग नष्ट हो, रक्त से रक्त का डाघ जाये ऐसा नहीं बनता। पानी से जाता है। ऐसे ही राग से राग नष्ट नहीं होता, वीतरागता से ही राग नष्ट होता है। यह तो बहुत स्पष्ट समझ में आये ऐसी बात है।

मुमुक्षु :— पण्डित कहते हैं कि शुभराग करेगा तो मोक्ष होगा।

पूज्य भाईश्री :— हाँ, परंपरा मोक्ष का कारण है। उसको ऐसी भ्रमणा हुई है, उसका क्या? ऐसी-ऐसी भ्रमणा होती है। उसको लाभ का कारण दिखता है, मानता है। उसने माना है इसलिये कहता है। उसमें क्या है कि ऐसे हीन पुरुषार्थी जीवों को शुद्धता क्या है यह मालूम नहीं है। शुद्धता का पुरुषार्थ क्या है यह भी उसको मालूम नहीं है। मात्र वह शुभभाव ज्यादा से ज्यादा करता है और उसको ऐसा लगता है कि यह करते हैं, ऐसा करते-करते अवश्य लाभ होनेवाला है।

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— ऐसी शक्ति ही नहीं है। घोर अंधकार में है, उसको उजाला क्या है यह मालूम नहीं है। उल्लू की सभा इकट्ठी हो और ऐसा प्रस्ताव करे, सर्वानुमत से वादविवाद के बिना ऐसा प्रस्ताव करे कि इस जगत में सूर्य जैसी कोई चीज नहीं है, सूर्य का नामनिशान नहीं है। कहनेवाले जूठे हैं। ठीक!

.... प्राप्ति नहीं होती। अनुभव में वह सहाय करता है ऐसा भी नहीं है। ऐसा है। धर्म के नाम पर उस शुभराग का रस है। धर्म के नाम पर, धर्म के बहाने उस शुभराग का रस है। परन्तु उस राग के रस द्वारा वीतराग स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। जीव को रागरस बाधक है, फिर शुभ का हो या अशुभ का हो, परन्तु रागरस स्वयं ही बाधक कारण है और सर्व प्रकार की बाह्य क्रिया में रागरस ही है। यहाँ तो दान, भक्ति और व्रत, नियम, संयम की बात कही है। परन्तु स्वाध्याय का, शास्त्रज्ञान का कोई भी विकल्प, कोई भी बाह्य क्रिया का

अनुसरण करता हुआ जीव का परिणाम वह राग ही है, निश्चित ही राग है और उसका रस है वह जीव को बाधक कारण है, ऐसा है।

मुमुक्षु :— दो को अलग किया, राग और राग का रस।

पूज्य भाईश्री :— राग में उसको रस नहीं होना चाहिये, हो जाये वह अलग बात है। करना हो और हो तो वह रस सहित होता है और नहीं करना हो और हो तो उसमें उसको रस नहीं आता, ऐसी बात है। उसको वीतराग होना है या रागी होना है, इतना सवाल है। उस ओर का अभ्यास नहीं है। वीतरागी होने का अभ्यास नहीं है इसलिये कठिन लगता है। कोई भी अनजान विषय कठिन ही लगता है। इस जीव को अनादि से अनजानविषय है इसमें तो कोई सवाल ही नहीं है और कोई भी अनजान विषय कठिन ही लगता है।

मुमुक्षु :— सुनते हैं उसका रस आता है तो वह भी...

पूज्य भाईश्री :— हाँ, वह भी रागरस हो गया। इसीलिये कहा, यहाँ तीन बात ली है। गुरुदेव के वचन में तो तीन ही बात ली है, अपनी चलती बात के साथ ले लेते हैं कि जो प्रवृत्ति हम करते हैं। प्रतिदिन शास्त्र पढ़ते हैं, प्रतिदिन शास्त्र सुनते हैं, इसके अतिरिक्त जो भी प्रवृत्ति करते हों वह। तो ऐसी जो तत्त्वज्ञान विषयक प्रवृत्ति है और उसमें जो वैचारिक विषय चलता है, उसमें भी रागरस है वह जीव को बाधा करता है। वह जीव को सत्य वीतरागरस में आने में नितांत बाधक कारण है, एकान्त बाधक कारण है।

मुमुक्षु :— कर्णेन्द्रिय का विषय है।

पूज्य भाईश्री :— हाँ, कहा है शास्त्र में कर्णेन्द्रिय का। तुझे मीठा लगता है तो कर्णेन्द्रिय का विषय है, ऐसा कहा है। स्वभाव मीठा लगना चाहिये।

श्रीमद्जी ने एक बहुत सरस बात कही है। कल थोड़ा पढ़ा था कि आत्मा है यह एक ही अलौकिक पदार्थ है, असंसारगत तत्त्व है। आत्मा

में अन्दर में तो संसार नहीं है। उससे जो कुछ बाह्य है वह सब असंसारगत तत्त्व है। तो ऐसा कहा कि जब तक इस जीव को संसारगत पदार्थ पर द्रव्य से अथवा भाव से 'प्रेम वर्तता है' ऐसा शब्दप्रयोग किया है, जब तक उसका उसमें रस है तब तक उसे शुद्धात्मा भास्यमान नहीं होता, अनुभव हो ऐसा नहीं परन्तु भास्यमान भी नहीं होता।

इसका अर्थ यह है कि जब तक ज्ञान के साथ ऐसा रागरस है, तब तक ज्ञान ऐसे दोष के, राग के अर्थात् दोष के पक्ष में इतना घुब गया है कि वह स्वयं के ही निर्दोष परमात्मा को भासन में नहीं ले सकता। अथवा ज्ञान अपने ही स्वभाव को, ज्ञानस्वभाव है वह, निर्दोष परमात्मा है वह तो ज्ञानस्वभावी है। तो ज्ञान अपने ही ज्ञानस्वभाव को पहचान नहीं सकता, भास्यमान नहीं कर सकता है। उसको अपना ही अपने में भासन नहीं होता। इसमें तो यह परिस्थिति है। वह ज्ञान विपर्यास को भजता है। रागरस के अस्तित्व में, रागरस की मौजूदगी में ज्ञान इस प्रकार विपर्यास को भजता है कि अपने ही स्वभाव को अवभासन में नहीं ले सकता। अतः ऐसा संसारगत प्रेम जब तक, ऐसे अपने घरेलू शब्द हैं, वह असंसारगत प्रेम को प्राप्त नहीं होता तब तक उसे आत्मा भास्यमान नहीं होता। और जब तक आत्मा ही भास्यमान नहीं होता तब तक उसको उसकी महिमा आये, यह बात कभी नहीं बन सकती। जब तक निज स्वरूप की महिमा नहीं आती (तब तक) परिणाम उस स्वरूप की ओर ढले ऐसा कभी नहीं बनता। परिणाम स्वरूप की ओर ढले नहीं और परिणाम रागरस में ढले और उसको स्वसंवेदन हो, ऐसा तो कोई प्रकार से नहीं बनता। यह सीधा हिसाब है।

पुनः इसके अन्दर विचित्रता यह है कि शुभराग है वह क्लेश है और यह क्लेश और दुःख होने पर भी तुझे उसका रस आता है! यह तो घोर अज्ञान है। यह, कहाँ चेतने जैसा है। एकदम लालबत्ती रखी है कि एक तो शुभराग है वह क्लेश है, दुःख है

ऐसा तुझे स्पष्ट कहते हैं और पुनः तुझे उसका रस जमा है। रागरस अर्थात् तुझे उसका अन्दर में रस जमा है। यह तो बहुत बड़ा अज्ञान है। तेरे परिणाम में तुझे किसका अनुभव होता है यह भी तुझे मालूम नहीं है। अथवा तो दुःख है वह सुख लगता है, कटु है वह मीठा लगता है, इसके जैसी विपरीत बात है।

मुमुक्षु :— गुरुदेव ने यह बात बहुत सरस ज़ोर से कही है।

पूज्य भाईश्री :— बहुत ज़ोर से। गुरुदेव का इस काल में मानों यह बात कहने के लिये ही उदय हुआ ऐसा कहें तो ठीक ही है। यह तो कहाँ-से लगा? कि परमागमसार का संकलन किया उस

वक्त पढ़ना बहुत हुआ। गठरी बाँधे उतना साहित्य था। भाई को दिया था न तैयार करने के लिये। गठरी थैला भरकर भेजी थी। उसका एक धारावाही ध्वनि देखा जाय तो ऐसा लगे कि यह एक बात करने के लिये मानों गुरुदेव का उदय हुआ है! अन्यथा किसी न किसी बहाने इस बात को मृदु की जाये अथवा स्थापित की जाये कि नहीं, नहीं अशुभ तो नहीं करता है। ठीक है। आखिर में अपेक्षा लगाकर, अशुभ तो नहीं करता है। उतना शुभ तो करे। गुरुदेव ने तो बात-बात में, एक प्रवचन में कोई प्रवचन इस विषय से खाली नहीं होगा। एक बात को बार-बार ली है। ७३ समाप्त हुआ।

सच्चिदानन्द प्रभु हैं बहिन!

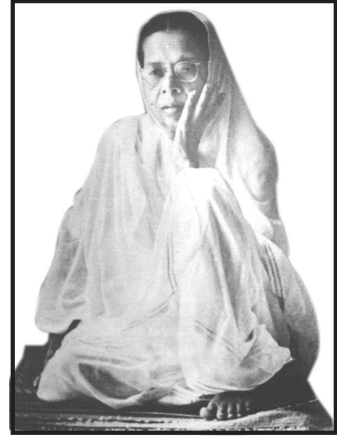
यह बहिन के वचन हैं। अंतर आनन्द के अनुभव में से आयी हुई बात है। बहुत जोर है अंतर का, अप्रतिहत भावना। आत्मा का सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति—उसमें से यह बात आयी है। आनन्द के स्वाद में मुरदे की भाँति चलती हैं। अहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु हैं बहिन! अंतर की महत्ता के सामने बाहर का कुछ लक्ष ही नहीं है। अनुभवी, सम्यक्त्वी, आत्मज्ञानी हैं। आत्मा का अनुभव तो है परन्तु साथ ही असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरणज्ञान है। परन्तु लोगों को बैठना कठिन पड़े।

जिसे आनन्द में जमावट हुई है, जो अतीन्द्रिय आनन्द के कौर ले रहा है और जो अतीन्द्रिय आनन्द को गट-गट पी रहा है ऐसे धर्मी का (साधक का) यह स्वरूप बहिन के मुख से (वचनामृत में) आया है। बिलकुल सादी भाषा। प्रभु के समवसरण में इस प्रकार बात चलती थी, भाई! ... अरे..! यह बात बैठे वह तो निहाल हो जाये ऐसा है। जिनेश्वर भगवान का जो फरमान है वह बहिन कह रही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री (—धन्य अवतार में से साभार उद्धृत)

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अगस्त-२०१९) का शुल्क स्व. श्री न्यालचन्द्र वोरा परिवार, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी.३ A



प्रश्न :- भगवान की वाणी जैसे खाली नहीं जाती, वैसे गुरुदेव की वाणीसे भी सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जागृत हो जाये।

समाधान :- भगवान की वाणी खाली नहीं जाती, वैसे गुरुदेव की वाणी खाली नहीं जाती। सभी के हृदय का परिवर्तन हो जाये। सब को बाह्य के आग्रह, मतमतांतर के आग्रह छूट जाये। अंतर में दूसरा कुछ करना है ऐसा हो जाये।

प्रगट और अप्रगट मेल ही है। पर्याय का स्वरूप तो प्रगट है और द्रव्य अप्रगट है। स्वयं जानता नहीं, द्रव्य अप्रगट तो शक्ति में है। बाकी द्रव्य किसीने छिपाया नहीं है, द्रव्य प्रगट है।

मुमुक्षु :- अप्रगट भी कहते हैं और प्रगट भी कहते हैं।

समाधान :- हाँ, दोनों कहते हैं। पर्याय अपेक्षासे अप्रगट। स्वयं खुदसे प्रगट है। पर्याय खुद परिणमनस्वरूप है इसलिये उसे प्रगट कहने में आता है। मेल ही है।

मुमुक्षु :- मेल तो है लेकिन हमको मेल नहीं होता। किसी भी प्रकारसे अप्रगट का आश्रय करना..

समाधान :- स्वयं स्वरूपसे तो प्रगट है। उसका आश्रय लेनेयोग्य है। उसका स्वभाव तो प्रगट ही है। पर्याय तो उसे वेदन में आती है इसलिये उसे प्रगट कहते हैं। विभाव में तो राग-द्वेष का वेदन है, स्वभाव में शुद्ध पर्याय का वेदन है, स्वानुभूति का वेदन है। द्रव्य को उसकी अपेक्षासे अप्रगट कहते हैं, लेकिन द्रव्य स्वयं स्वरूपसे प्रगट है। उसका आश्रय लेने योग्य है। आश्रय ले सकते हैं। उसका स्वभाव ग्रहण करे तो आश्रय ले सकते हैं। ज्ञायक स्वभाव है स्वयं, वह आश्रय लेने योग्य है और लेते भी हैं।

मुमुक्षु :- कार्य तो पर्याय में होता है तो महत्ता तो पर्याय की होनी चाहिये।

समाधान :- कार्य पर्याय में होता है लेकिन किसके आश्रयसे होता है? जिसका आश्रय लेती है उसकी महत्ता है। अनन्त शक्तिसे भरा आत्मा है। पर्याय तो एक क्षण के लिये होती है। प्रतिक्षण नयी-नयी पर्याय होती है। इसलिये महत्ता तो द्रव्य की है कि जो अनन्त शक्तिओंसे भरपूर (है)। चाहे जितनी पर्यायें प्रगट हो तो भी उसका स्वभाव तो खाली नहीं हो जाता। वह तो अनन्त-अनन्त स्वभावसे भरा है। अनन्त काल तक आनन्द प्रगट हुआ करे तो भी वह तो अनन्त ही अनन्त रहता है। अनन्त ज्ञान है। लोकालोक को एक समय में जानता है, दूसरे समय में उसका ज्ञान भी खाली नहीं होता। इतना जाना इसलिये अब ज्ञान खत्म हो गया, ऐसा भी नहीं है। अनन्त शक्तिसे भरा सामर्थ्य द्रव्य में है। द्रव्य की महत्ता है। पर्याय की महत्ता, शुद्ध पर्याय प्रगट हुई और शुद्ध वेदन में आती है, केवलज्ञान प्रगट होता है, साधना की पर्याय प्रगट होती है इसलिये उस अपेक्षासे पर्यायने अपने स्वभाव का आश्रय किया इसलिये महत्तायुक्त है। फिर भी द्रव्य तो अनन्त शक्तिसे भरा है इसलिये द्रव्य तो महामहिमावंत है। केवलज्ञान महामावंत है, लेकिन उसे जिस द्रव्य का आश्रय है वह द्रव्य तो उससे भी महामावंत है।

मुमुक्षु :- द्रव्य और पर्याय ऐसे देखे तो बहुत समीप है।

समाधान :- समीप ही है, भिन्न थोड़े ही न है। द्रव्य और पर्याय.. द्रव्य का आश्रय करनेसे शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। शुद्ध पर्यायरूप स्वयं परिणमता है। पर्याय भिन्न है और द्रव्य भिन्न है ऐसा नहीं है। वह तो अंश-

अंशी का भेद है। बाकी पर्याय कहीं और जगह भिन्न है और द्रव्य कहीं और जगह भिन्न है, एकदम अलग-अलग है ऐसा तो नहीं है।

मुमुक्षु :- दो भाग नहीं है।

समाधान :- दो भाग नहीं है उसके। दो द्रव्य के दो भाग है ऐसे द्रव्य-पर्याय के दो भाग है ऐसा नहीं है। अंशी पूरा है और वह (पर्याय) अंश है, इतना भेद है। उसे खोजने के लिये दूर नहीं जाना पड़ता। द्रव्य के आश्रयसे पर्याय होती है। इसलिये द्रव्य के खोजने के लिये कहीं दूसरी जगह जाना पड़ता है ऐसा नहीं है। दोनों समीप ही है, दूर-दूर नहीं है। जिसके आश्रयसे पर्याय होती है वह द्रव्य कैसा है? ऐसे द्रव्य का मूल स्वभाव देखे तो द्रव्य खुद का अस्तित्व रखता है और वह उसके लक्षणसे पहचाना जा सकता है।

अनादि कालसे पर्यायपर दृष्टि है। इसलिये द्रव्य पहचानने में आता नहीं। दृष्टि उसकी बाहर है, विभावपर्याय पर दृष्टि है इसलिये वह स्वभाव को पहचानता नहीं। इसलिये उसे दूर लगता है। लेकिन दूर नहीं है, स्वयं ही है। उसमें दूर कहाँ था? उसे भ्रान्ति में दूर हो गया है। दूर नहीं है, समीप ही है। कोई बाह्य वस्तु नहीं है कि उसे खोजने जानी पड़े, स्वयं ही है। स्वयं ही अन्दर में पहचानने में आये ऐसा है। द्रव्य, गुण और पर्याय वह सब द्रव्य का स्वरूप है।

मुमुक्षु :- तीनों की महत्ता उसकी अपेक्षासे है।

समाधान :- प्रत्येक की अपेक्षासे प्रत्येक की महत्ता है। द्रव्य अनन्त शक्तिसे पूर्ण है इसलिये द्रव्य भी महिमावंत, महामहिमावंत है। अनन्त शक्तियाँ सब द्रव्य में भरी है। लेकिन शुद्ध पर्याय प्रगट होती है वह भी महिमावंत है, साधकदशा महिमावंत है, पूर्ण केवलज्ञान महिमावंत है। जिस शुद्ध द्रव्य के आश्रयसे जो पर्याय प्रगट हुई वह शुद्धरूप परिणमती है वह पर्याय भी महिमावंत है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय इत्यादि सब महिमावंत है। उसे जिसका आश्रय है ऐसा द्रव्य महामहिमावंत है। सब का आश्रय एक द्रव्य है।

मुमुक्षु :- प्रवचनसार में अंतिम पाँच गाथाओं को पंचरत्न कहा। उसमें तो संसारतत्त्व का भी वर्णन आता है। तो वह भी...?

समाधान :- द्रव्य स्वयं रत्न है न! पंच रत्न। (संसारतत्त्व को) अपेक्षासे रत्न कहा है। स्वभाव को पहचाने तो दोनों आमनेसामने है, उसे बीच में संसार को पहचानना होता है। विभाव और स्वभाव। मिथ्यात्व को गुणस्थान कहा है। मिथ्यात्व गुणस्थान को गुणरूप कैसे कहें? विपरीत पर्याय है तो उसे गुणस्थान कहा है। ऐसे यह स्वयं स्वभावरूप आत्मा नहीं है। उस रूप परिणमित हुआ तो उसे रत्न कहा है। मिथ्यात्व गुणस्थान कोई गुण की भूमिका नहीं है। गुण का स्थान (नहीं है)। (सिर्फ) नाम गुणस्थान कहा है। गुणसे भरपूर आत्मा (है), उसकी विपरीत पर्याय को गुण का आरोप दिया है।

मुमुक्षु :- उसकी पर्याय है इसलिये...

समाधान :- इसलिये। रत्नाकर आत्मा (है), तो उसकी विपरीत पर्याय को रत्न का आरोप दिया है।

मुमुक्षु :- सुने तब तो ऐसा लगता है कि तुरन्त हो सकता है। फिर प्रयोग में लाने जाते हैं वहाँ सब फेरफार हो जाता है। समाधान :- पुरुषार्थ करे तो होता है। अनादिस बाहर की अभ्यास है इसलिये हो सकता नहीं। लेकिन स्वभाव खुद का है इसलिये हो सके ऐसा है। प्रयोग में आने में उसे मुश्किल लगता है। विचार करे और निर्णय में बैठे तो भी पुरुषार्थ करके वापस मुड़ना, परिणति को वापस मोड़नी उसे मुश्किल लगता है। परिणति अनादिसे विभाव के साथ एकत्व हो रही है। उसे भिन्न करनी उसे (मुश्किल लगता है)। एकदम पुरुषार्थ करना उसे मुश्किल पड़ता है, लेकिन हो सके ऐसा है। अनन्त (जीव) मोक्ष में गये हैं, वे सब पुरुषार्थ करके

ही गये हैं। चैतन्य को पहचानकर ही गये हैं। अनादि का अभ्यास को तोड़कर, अपना जो अनादि का स्वभाव है उसे प्रगट किया है। स्वयं का स्वभाव जो अनादि शाश्वत है उसे प्रगट किया। विभाव के संस्कार तोड़ दिये हैं। अनन्त जीव उसप्रकार साधन को प्राप्त हुए और मोक्ष गये हैं।

मुमुक्षु :- मुनिवरों तो महा निधान दे गये हैं।

समाधान :- निधान दिया है, खजाना खोल दिया है। मुक्ति की पर्याय इत्यादि कैसे प्रगट हो, वह मार्ग बताया है। शास्त्रों में आता है, गुरुदेवने उसका रहस्य खोला है। सीधी रीतसे पहले शास्त्र कोई समझता नहीं था।

मुमुक्षु :- कोई पढ़ता भी नहीं था और समझते भी नहीं थे।

समाधान :- समझते नहीं थे, गुरुदेवने सब रहस्य खोले हैं। एक-एक शब्द का अर्थ करके उसके भाव कितने गहरे हैं, वह गुरुदेवने खोला है। सब कहाँ पड़े थे, बाह्य क्रिया में पड़े थे। मिथ्या, कुदेव, कुगुरु सब मानते थे। शुभभावसे धर्म होता है, ऐसी सब मान्यता कितनी स्थूल मान्यता थी। गुरुदेवने द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप समझाया। उसमेंसे द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार में अभी सब आ गये हैं। वह सब तो कहीं दूर रह गया। वह सब तो स्थूल (है)। द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप गुरुदेवने समझाया। अब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार आते हैं। बाहरसे धर्म होता है, ऐसा मानते थे। सामायिक करे तो धर्म होता है, प्रतिक्रमण के पाठ बोले तो धर्म होता है, उपवास करे तो धर्म होता है, ऐसी सब मान्यता बाहरसे थी। कोई ज्यादा करे तो शुभभाव रखें तो धर्म होता है। लेकिन वह शुभभाव भी आत्मा का स्वभाव नहीं, पुण्यबन्ध का कारण है। गुरुदेवने वह बारंबार कहा इसलिये सब को बैठा।

मुमुक्षु :- एकदम अंदरसे घूंटन करवाया।

समाधान :- बार-बार घूंटन करवाया। नहीं तो संप्रदाय के आग्रह छूटने (आसान नहीं था)। वह तो गुरुदेव की वाणी ऐसी ज़ोरदार थी तो टूट गये।

मुमुक्षु :- गुरुदेव का परिवर्तन हुआ तो पूरे समाज का परिवर्तन हुआ।

समाधान :- समाज का परिवर्तन हुआ।

मुमुक्षु :- शुभ का वज़न रह जाता है इसलिये हटता नहीं।

समाधान :- शुभ में जीव शुभ की रुचि में अटक जाता है। शुभ बीच में आये बिना रहता नहीं। अशुभभावसे बचने के लिये शुभभाव बीच में आते हैं। जिनेन्द्रदेव की भक्ति, गुरु की भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्वविचार सब आता है। शुभभाव बीच में आये बिना रहते नहीं। लेकिन उसकी रुचि (हो जाये), उससे धर्म होगा ऐसा माने तो उसे यथार्थ श्रद्धा नहीं है। उससे भी स्वयं भिन्न है। वह अपना स्वभाव नहीं है। ऐसी श्रद्धा रखकर शुभभाव में जुड़े कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। लेकिन अभी अंदर आत्मा प्रगट हुआ नहीं हो और शुभ को छोड़ दे तो अशुभ में चला जाये। शुभ बीच में आये बिना रहता नहीं। शुभ अपना स्वभाव नहीं है। मुनिवरों को भी शुभभाव आते हैं। पंच महाव्रत के, देव-गुरु-शास्त्र के, भक्ति के (भाव) आते हैं।

मुमुक्षु :- मुनिवरोंने भगवान की भक्ति की है।

समाधान :- मुनिवरोंने भगवान के स्तोत्र रचे हैं।

मुमुक्षु :- भक्ति में भी तत्त्व रखा है।

समाधान :- तत्त्व है। तो गृहस्थाश्रम में तो आये। मुनिवरों को आये तो जहाँ सम्यग्दर्शन है वहाँ तो आता ही है।



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

४३

कलकत्ता, १०-९-१९६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मारथी.....

आपका कई दिनों पहले पत्र आया था। श्री 'पंचाध्यायी' की दर्शन-ज्ञान विषय की गाथाओं का जिक्र था। पुस्तक का यह सहज योग नहीं हो सका। सोनगढ़ में अपेक्षावत् इस विषय की समाधान चर्चा हुई है, ऐसा स्मृति में है। आपको वहाँ से समाधान हो सकेगा, जानने पर खुलासा लिखें। चैतन्यप्रतिमा व चेतनपरिणति के स्वतंत्र-स्वतंत्र अस्तित्व की यथार्थ कबुलात कर चैतन्यप्रतिमा में अपना स्थापन करते ही परिणति प्रतिमा का आलिंगन करने लगती है, जो इष्ट है।

धर्मस्नेही
निहालचंद्र

४४

कलकत्ता, १०-९-१९६३

ॐ

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

आत्मारथी.....

पत्र आपका ता. ३-९- का मिला। पहलेवाला पत्र भी यथासमय मिल गया था। दशलक्षणी पर्व, आपने तीन लोक में परम उत्तम, निर्भय बनानेवाले, परम निर्भय, सिंहस्वरूप श्री गुरुदेव के सान्निध्य में मनार्थें होंगे। वह कहते हैं - "स्वभावअंश में किंचित् भी दोष नहीं है, नित्य स्वभाव में दृष्टि थंभ जानेसे, उत्पन्न हुए सहज स्वभाव में, क्षमा आदि दूषित भाव प्रत्यक्ष पराश्रित (जड़ के) पर के हैं; अतः सहज क्षमाभाव त्रिकाल जयवंत वर्तो! हमने कभी दोष किया ही नहीं, ऐसा स्वभाव निरंतर वृद्धि पामो। विभाव की गूँज में गूँजता हुआ अज्ञान भाव सहज नाश पामो। विभाव में तनीजो नहीं। स्वभाव-सीमा में निरंतर अडिग जमे रहो। क्षणिक विभाव वेदीजता हुआ अधिक की सीमा को पार नहीं कर सकता, अतः वहीं लय हो जाता है।"

“करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तृत्व सकति अखण्ड रीति धरै है।
याहीके गवेषी होय ज्ञानमहिं लखि लीजै,
याहीकी लखनि या अनंत सुख भरे है॥”

ज्ञान कणिका पत्र द्वारा मँगवाई सो यह तो आपके पास ही है। स्वअवलंबन से सहज ही विभाव से पृथक् होकर प्रगटती रहती है। हे शशीभाई! अनेकानेक जीवों की योग्यता अक्षय सुख के उदय की

है, अतः तीर्थंकर से भी अधिक सत्पुरुष का योग प्राप्त हुआ है, जिनकी नित्य प्रेरणा उधर से विमुख कराकर स्वयं के नित्य भंडार की ओर लक्ष्य कराती रहती है; यहाँ से ही पूज्य गुरुदेव के न्याय अनुभवसिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।....

“जिन (निज) सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परमपद, लहिये एक क्षणेन।।”

वात्सल्यानुरागी
निहालचंद्र

२००

बंबई, माघ सुदी, १९४७

वचनावली

१. जीव स्वयंको भूल गया है, और इसलिये उसे सत्सुखका वियोग है, ऐसा सर्व धर्म सम्मत कथन है।

२. स्वयंको भूल जानेरूप अज्ञानका नाश ज्ञान मिलनेसे होता है, ऐसा निःशंक मानना।

३. ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीके पाससे होनी चाहिये। यह स्वभाविकरूपसे समझमें आता है, फिर भी जीव लोकलज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता, यही अनंतानुबंधी कषायका मूल है।

४. जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है, उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये, ऐसा जिनागम आदि सभी शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।

५. जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।

६. ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है कि जो एकनिष्ठासे, तन, मन और धनकी आसक्तिका त्याग करके उसकी भक्तिमें जुट जाये।

७. यद्यपि ज्ञानी भक्तिकी इच्छा नहीं करते, परन्तु मोक्षाभिलाषीको वह किये बिना उपदेश परिणमित नहीं होता, और मनन तथा निदिध्यासन आदिका हेतु नहीं होता; इसलिये मुमुक्षुको ज्ञानीकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये ऐसा सत्पुरुषोंने कहा है।

८. इसमें कही हुई बात सब शास्त्रोंको मान्य है।

९. ऋषभदेवजीने अट्टानवें पुत्रोंको त्वरासे मोक्ष होनेका यही उपदेश किया था।

१०. परीक्षित राजाको शुकदेवजीने यही उपदेश किया है।

११. अनंत काल तक जीव स्वच्छंदसे चलकर परिश्रम करे तो भी अपने आप ज्ञान प्राप्ति नहीं करता; परन्तु ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक अन्तर्मुहूर्तमें भी केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

१२. शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं और वे जीवको अधिकारी होनेके लिये कही हैं; मोक्षप्राप्तिके लिये ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।

१३. यह ज्ञानमार्गकी श्रेणि कही, इसे प्राप्त किये बिना दूसरे मार्गसे मोक्ष नहीं है।

१४. इस गुप्त तत्वका जो आराधन करता है, वह प्रत्यक्ष अमृतको पाकर अभय होता है।

॥ इति शिवम ॥

